M.A. Semester - I
Philosophy CC - 04

Dr. Ragini Kumari
Associate Prof. & Head
P.G. Centre of Philosophy
Maharaja College, Ara

मीमांसा दर्शन के अपूर्व की अवधारणा : व्याख्या एवं समीक्षा

मीमांसा एक कर्मकाण्डी दर्शन है। इसलिए इसमें कर्म की प्रधानता और धार्मिक रीति-रिवाजों को अधिक महत्वपूर्ण माना गया है। जब लोग वैदिक कार्यों को भूलने लगे थे और रीतियों एवं कार्यों के मूल्य को खोकर मद्य, बलि, हवन आदि कर्मों से अनास्था रखने लगे थे, तब सभी प्रकार के वैदिक कर्मों को क्रमबद्ध और रीतिबद्ध कर के उनके महत्व और अर्थ को स्पष्ट करने के उद्देश्य से मीमांसा दर्शन का आर्विभाव हुआ।

मीमांसा दर्शन ने यह स्पष्ट करने का प्रयास किया कि मनुष्य के कोई भी कर्म निष्फल नहीं होते। शुभ कर्मों का फल शुभ और अशुभ कर्मों का फल अशुभ होता है। शुभ कर्मों से मनुष्य के अन्दर सद्गुण और अशुभ कर्मों से दुर्गुण का विकास होता है। और सद्गुणों के विकास से जीवन सुखी और दुर्गुणों के विकास से दुःखी होता है। मीमांसा की यह भी मान्यता है कि मनुष्य के बन्धन और मुक्ति का कारण भी कर्म ही है। मनुष्य के वासना, भोग और मोह जैसे जो अनुचित कर्म हैं वे उसके बन्धन के कारण हैं। इस बन्धन से मुक्त होने के लिए अनिवार्य है कि हवन, यज्ञ, बलि आदि जो उचित कर्म हैं उनका सम्पादन किया जाय। मीमांसा यह भी मानता है कि प्रत्येक कर्मों का 'कर्म फल' होता है।

मीमांसा के अनुसार 'धर्म कर्म' आदि ऐसे कर्म जो धर्म के अनुकूल किए जाते हैं, वे ही मुक्ति के साधन हो सकते हैं। धर्म वह है जो मनुष्य के आध्यात्मिक विकास और उसके उचित जीविकोपार्जन में सहायता पहुँचावे। इस धर्म का ज्ञान 'वेद' से प्राप्त होता है। धर्म का लक्षण है कि वह ऐसी आज्ञा दे

Scanned with CamScanner

जिससे कार्य का सम्पादन हो।

चूँकि मीमांसा एक अनीश्वरवादी दर्शन है इसलिए मीमांसा कर्मों के फल को ईश्वर की इच्छा पर मानने के लिए तैयार नहीं है क्योंकि उनके अनुसार अनेक प्रकार के कर्मों का फल कोई एक (जैसे ईश्वर) नहीं दे सकता। डा० राधाकृष्णन ने कहा है कि ——

"Mimansakar are unwilling to trace the result of actions to God's will, hence an uniform cause can not account for the variety of effects."

अतः मीमांसकों के अनुसार ईश्वर का महत्व नहीं बल्कि मात्र 'वेद' का महत्व है। उनकी मान्यता है कि वेद से ही कर्मों का ज्ञान प्राप्त होता है। वेद में ही कर्मों के शुभाशुभ तथा औचित्य एवं अनौचित्य को जानने के तरीके बतलाए गये हैं। अतः इन वेद विहित तरीकों के अनुकूल जीवन बीताना ही उचित और शुभ है।

जब मीमांसक कर्मों के पालन पर जोर देते हैं तो प्रश्न यह उठता है कि किन-किन कर्मों का पालन करना चाहिए। इस सन्दर्भ में ~~मीमांसा ने~~ निम्नलिखित पाँच कर्मों का उल्लेख मीमांसा दर्शन में किया गया है——

(1) नित्य कर्म — जो कर्म प्रत्येक व्यक्ति को नित्य मानी प्रतिदिन करना चाहिए वे नित्य कर्म हैं। जैसे-सन्ध्यापूजा, स्नान आदि।

(2) नैमित्तिक कर्म — जो कर्म खास-खास अवसरों पर सम्पादित किए जाते हैं वे 'नैमित्तिक कर्म' हैं जैसे — जन्म, विवाह, मृत्यु आदि के अवसरों पर किए जानेवाले भोज एवं श्राद्ध आदि कर्म।

मीमांसकों ने ऐसा बतलाया है कि नित्य और नैमित्तिक कर्म करने से 'पुण्य' नहीं होता, किन्तु इनको नहीं करने से पाप होता है।

(3) काम्य कर्म — जो कर्म किसी विशेष लाभ के लिए किए जाते हैं वे काम्य कर्म है। जैसे धन, पुत्र, स्वर्ग आदि की प्राप्ति के लिए यज्ञ आदि करना।

इन कर्मों के नहीं करने से पाप नहीं होता, किन्तु

Scanned with CamScanner

करने से पुण्य अवश्य होता है।

(स) निषिद्ध कर्म — वेदों के द्वारा जो निषिद्ध यानी वर्जित कर्म है, उन्हें निषिद्ध कर्म कहते हैं। जैसे ब्राह्मण की हत्या निषिद्ध कर्म है। ऐसे कर्मों को नहीं करने से पुण्य नहीं होता, किन्तु करने से पाप अवश्य होगा है।

(ड) प्रायश्चित कर्म — बुरे कर्मों अथवा निषिद्ध कर्मों के प्रभाव को कम करने के लिए जो कर्म किए जाते हैं, वे प्रायश्चित कर्म है। असत्य भाषण, हत्या आदि बुरे कर्मों के करने से जो पाप होता है उसकी शान्ति प्रायश्चित कर्मों से की जाती है। ऐसे कर्मों की विधि वेद में विधिवत बतलायी गयी है।

मीमांसा की यह भी मान्यता है कि वैदिक कर्मों का सम्पादन किसी असुर, वरुण देवताओं को प्रसन्न करने के उद्देश्य से नहीं बल्कि उनका सम्पादन मात्र इसलिए होना चाहिए कि वे वेद की आज्ञा है। लाभ की इच्छा से कर्म करना अनुचित है अतः कर्म को अपना कर्त्तव्य या धर्म समझकर नहीं करना चाहिए। प्रभाकर ने भी माना है कि फल की इच्छा से अधिक आवश्यक है, कर्त्तव्य की भावना। अतः वैदिक कर्मों का पालन निष्काम भाव से ही करना चाहिए। मीमांसकों का यह 'कर्म सिद्धान्त' गीता के निष्काम कर्म और पाश्चात्य दार्शनिक कान्ट के "Duty for duty sake" (कर्त्तव्य-कर्त्तव्य के लिए) से बहुत अंशों में मेल रखता है। गीता के द्वितीय अध्याय में जब अर्जुन अपने सगे सम्बन्धियों के प्रेम-भावना में आकर युद्ध करने के लिए तैयार नहीं होते तब कृष्ण निष्काम कर्म की शिक्षा देते हुए कहते हैं कि तुम्हें कर्म करने मात्र का ही अधिकार है फल में नहीं। अतः कर्मों के लिए फल की इच्छा कर अनैतिक नहीं बनना चाहिए। "कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचनी?" गुरुमी ने भी माना कि कर्त्तव्य का पालन मात्र कर्त्तव्य के लिए ही होना चाहिए, किसी उपकार या फल की इच्छा से नहीं। नैतिक नियमों के अनुकूल और उनके लिए किया गया कर्म ही शुभ है उन्होंने लिखा भी है कि "In order that an action should be morally good, it is not enough that

it conforms to the moral law but it must also be done for the sake of the law."

किन्तु यह भी नहीं भूला जा सकता कि गीता और कान्ट के सिद्धान्त से मीमांसा का सिद्धान्त भिन्न भी है किन्तु इन दोनों में सूक्ष्म भेद भी है, जहाँ गीता और कान्ट के फल के वितरण के लिए ईश्वर का सहारा लेते हैं, वहीं मीमांसक 'अपूर्व' का सहारा लेते हैं, उनके अनुसार तो ईश्वर को स्वीकार किया ही नहीं जा सकता।

परन्तु ध्यान देने योग्य है कि फल की इच्छा से कर्तव्य नहीं करने का तात्पर्य यह नहीं कि कर्मों का फल मिलता ही नहीं है। Kant की तरह मीमांसक भी यह विश्वास करते हैं कि यद्यपि फल की इच्छा से कर्म नहीं करना चाहिए फिर भी सृष्टि की ऐसी व्यवस्था है कि जो कर्म करता है, वह उसके फल से वंचित नहीं रह सकता। रीति और नैतिक कर्म करने से स्वर्ग की प्राप्ति होती है। प्रभाकर और भट्ट दोनों सम्प्रदाय मानते रहे हैं कि कर्म फल स्वर्ग है, इसलिए जो स्वर्ग चाहता है उसे यज्ञ करना चाहिए। "स्वर्गकामोयजेत" बहुत दिनों तक मीमांसकों की यही धारणा थी कि 'स्वर्ग' ही कर्मफल है, किन्तु बाद के मीमांसकों ने स्वर्ग की जगह 'मोक्ष' को 'कर्मफल' माना है। उनकी मान्यता है कि पूर्वजन्म के संस्कार से मनुष्य बन्धन में पड़ जाता है। किन्तु हवन, पूजा, रीति, बलि आदि कर्मों को करने से संस्कार मिट जाते हैं जिससे आत्मा को पुनः जन्म के फेरे में नहीं पड़ना पड़ता है उसे मुक्ति मिल जाती है। इन मीमांसकों की मान्यता है कि प्रत्येक कर्म का अपना फल है। इन कर्मों के करने से कुछ विशेष पुण्य संचित होता है इसी प्रकार मीमांसा में 'कर्म फल' का उल्लेख है किन्तु यहाँ भी कहा गया है कि ये सभी फल स्वर्ग या मोक्ष के साधन मात्र है। क्योंकि स्वर्ग या मोक्ष ही मुख्य लक्ष्य है। जो मनुष्य अनुचित कर्म करता है उसे उसी कर्म के अनुकूल दूसरा शरीर धारण करना पड़ता है और जो उचित कर्मों का पालन करता है उसे मुक्ति मिल जाती है।

Scanned with CamScanner

मीमांसा के अनुसार आज के किए गये कर्मों का फल भविष्य में 'अपूर्व सिद्धान्त' के द्वारा मिलता है। अपूर्व का अर्थ है कि वह नई वस्तु जो पहले नहीं जानी गयी है। इस सिद्धान्त के अनुसार कारण में एक 'अदृष्ट शक्ति' को जन्म देता है जिसे अपूर्व कहते हैं, यह मनुष्य के कर्मों की एक शक्ति है जो समय पाकर फलित होती है यह अपूर्व सिद्धान्त में कर्म की दृष्टि से कर्म है। इसी आधार पर मीमांसक मानते हैं कि हमारे कर्म के परिणामस्वरूप भी एक शक्ति बन जाती है जो आत्मा के साथ रहती है और परिस्थितियों के अनुकूल होने तथा बाधाओं के दूर होने पर फल देती है। अतः मीमांसकों की मान्यता है कि कर्म जब तक समाप्त नहीं होने के पूर्व किसी अदृष्ट शक्ति को जन्म नहीं देते तब तक उनका फल भविष्य में नहीं मिल सकता। अतः मीमांसा के पूर्वज 'Jaimini ऋषि अदृष्ट की कल्पना करते हैं, जिसे अपूर्व की संज्ञा देते हैं। डा० राधाकृष्णन ने भी लिखा है कि—

"Jaimini assumes the existence of such an unseen force, which he calls 'apurva'....."

अस्तु कुल मिलाकर मीमांसक यही मानते हैं कि 'अपूर्व' कर्म और फल के बीच की एक कड़ी है। जिन कर्मों को हम अर्जित करते हैं, उनसे पुण्य संचित होता है और बाधाओं के दूर होने पर उस पुण्य का उपभोग हम करते हैं।

उपर्युक्त विवेचन से मीमांसा का कर्मफल सिद्धान्त स्पष्ट हो जाता है। अब हम देखेंगे कि मीमांसकों का विचार कहाँ तक संगत है।

मीमांसक कर्म और फल के बीच एक ~~मीमांसा कर्म और फल के~~ आवश्यक तत्व 'अपूर्व' को मानते हैं। अपूर्व सिद्धान्त के अनुसार जब बीज में वृक्ष उत्पन्न करने की एक शक्ति है तो क्यों बीज से सदा वृक्ष उत्पन्न नहीं होते? कभी-कभी बीज बोने के बावजूद भी वृक्ष नहीं उग पाते। अतः यदि कारण में एक अदृष्ट शक्ति है तो निश्चित रूप से सर्वदा बीज से वृक्ष उगना चाहिए।

Scanned with CamScanner

किन्तु कभी ऐसा होगा नहीं। अतः मीमांसक इस सन्दर्भ में असंगत है।

किन्तु मीमांसकों ने उत्तर देते हुए कहा है कि बीज से कभी-कभी पेड़ उत्पन्न इसलिए नहीं होगा कि शक्ति के मार्ग में कुछ बाधाएँ हैं अथवा कभी-कभी उस शक्ति का ह्रास हो जाता है जैसे बीज को भून या सड़ा देने से उसकी शक्ति का ह्रास हो जाता है जिससे उस स्थिति में बीज से वृक्ष यानी कारण से कार्य का उत्पन्न नहीं होना स्वाभाविक ही है।

नैयायिक लोग भी इस अदृष्ट-शक्ति का खण्डन करते हैं। नैयायिकों के अनुसार इस शक्ति के अभाव में भी कारण से कार्य की उत्पत्ति सम्भव है। बाधाओं के अभाव में कारण, कार्य को उत्पन्न करता है और बाधाओं की उपस्थिति या भाव में कार्य उत्पन्न नहीं करता। इसमें अपूर्व का कोई आश्रय नहीं।

इस आक्षेप का निराकरण करते हुए भी मीमांसकों का कहना है कि यदि न्याय का उक्त मत भी सही मान लिया जाय तो उसके अनुसार भी कार्य की उत्पत्ति के लिए कारण के अलावे "बाधा का अभाव" अनिवार्यतः मानना पड़ता है। अतः यदि हम भी कारण में एक अन्य अदृष्ट शक्ति मानते हैं तो कोई असंगति नहीं है।

मीमांसक के कर्म सिद्धान्त में एक असंगति यह नजर आती है कि यह एक ओर फल की इच्छा किये बिना कर्म को करने की शिक्षा देता है तो दूसरी ओर कर्मों को करने में नित्य नैमित्तिक आदि के साथ-साथ 'काम्य कर्म' जिसे धन, पुत्र, स्वर्ग आदि फल की इच्छा से किया जाना चाहिए को भी करने की सलाह देता है। अतः इन दो विरोधात्मक बातों के बीच मीमांसा का कर्म विचार असंगत जान पड़ता है।

मीमांसा मात्र कर्मकाण्ड है इसलिए यह अन्य दर्शनों की तरह दर्शन नहीं, बल्कि कर्मशास्त्र है, यह जगत में एक दार्शनिक विवेचन के रूप में अत्यधिक अपूर्ण है। इसमें धर्म का स्वरूप भी अविश्लेषित है। कर्मकाण्ड ने धर्म की आत्मा को इस प्रकार खण्डित कर दिया है कि उसका ईश्वर से कोई सम्बन्ध नहीं रह

गया है। यह स्वतन्त्र विवेचन प्रस्तुत नहीं कर वेदों की आज्ञा पर आँख मुन्दकर चल पड़ता है फिर यह अपने उद्देश्य में सफल भी नहीं है, क्योंकि इसका जन्म हुआ वैदिक कर्मों के प्रति बढ़ती हुई अनास्था को रोकने के लिये। किन्तु वेद की अक्षरश: आज्ञा का पालन करने के बावजूद भी यह ईश्वर को जो वैदिक कर्मों का आधार है अस्वीकार कर देता है, जो इसके उद्देश्यों के प्रति भूल हीं कहा जा सकता है। तभी तो मीमांसा के बाद वैष्णव, शैव तथा एकेश्वरवाद का आविर्भाव हुआ और धर्म को कर्मकाण्ड की श्रृंखलाओं से मुक्त करने का प्रयास किया गया।

अस्तु समीक्षात्मक दृष्टि से देखने पर मीमांसा के कर्मफल विचार में जरूर असंगतियाँ नजर आती है, फिर भी दार्शनिक दृष्टि से चाहे इसका महत्व उतना नहीं हो किन्तु व्यवहारिक दृष्टि से इसका अत्यधिक महत्व भी है। राजनीतिक और सामाजिक दृष्टि से तो इसका काफी महत्व है, आज लोग प्राय: यह सोच बैठते हैं कि बुरे कर्मों का फल नहीं मिलेगा और वे बुरे कर्मों, पाप कर्मों आदि को करते जाते हैं जिससे पाप दिन-प्रतिदिन बढ़ते जा रहे हैं।

अत: आज के समय में मीमांसा के कर्म विचार का अनुकरण किया जाय तो बुरे कर्मों से छुटकारा मिल सकता है, क्योंकि यह सिद्धान्त मानता है कि फल की इच्छा नहीं करने के बावजूद भी जगत की ऐसी व्यवस्था है कि कर्म करनेवालों को उसका फल अनिवार्यत: भोगना पड़ता है। अस्तु मीमांसा के असंगतियों के महत्व को भुला नहीं जा सकता है।

X———————X